ओ३म्

खण्डन मण्डन ग्रन्थ माला सं० १७

पं० माधवाचार्य की चुनौती

का

उत्तर

लेखक—

डा० श्रीराम आर्य

कासगंज

प्रकाशक

वैदिक साहित्य प्रकाशन संघ

कासगंज (उ० प्र०) भारतवर्ष

प्रथमवार दयानन्दाब्द १३८ मू० ४४ न० पै०

सृष्टि संवत् १९७२९४९०६२

सन् १९६१

मुद्रक:—
श्री गोपाल प्रिंटिंग प्रेस
हाथरस ।

श्री पं० माधवाचार्य जी शास्त्री देहली निवासी सनातन धर्म के मान्य उपदेशक एवं शास्त्रार्थी विद्वान हैं। जहाँ कहीं भी शास्त्रार्थ का अवसर आता है पौराणिक लोग इनको याद किया करते हैं। आर्य समाज के साथ भी बहुधा यह वाद-विवाद के लिये यत्र तत्र उपस्थित होते रहते हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि इनका मुख्य पेशा ही पौराणिकों को भड़का कर शास्त्रार्थों का व्यवसाय करना रह गया है। इन्होंने जितनी भी पुस्तकें लिखी हैं सभी में ऋषि दयानन्द और आर्य समाज के विरुद्ध निरन्तर विष उगलते रहे हैं। इनकी पुस्तकों में गाली गलौज की भरमार रहती है। यही इनके पाण्डित्य की विशेषता है। पौराणिक गल्पों को तोड़ मरोड़ कर वैदिक सिद्ध करने का यह सदा असफल प्रयास किया करते हैं। आर्य समाज के सामने शास्त्रार्थों में सदैव पराजित होते रहने पर भी यह उत्साह को नहीं छोड़ते हैं। इनको वैसे तो आर्य समाज के मान्य सिद्धान्तों पर कोई शंका नहीं है परन्तु अपढ़ पौराणिकों को उत्तेजित करने के लिये कुछ बनावटी प्रश्न इन्होंने बना रखे हैं जिन्हें इन्होंने शास्त्रार्थ के चेलेन्ज के रूप में छपवा रखा है और उन्हें बांटा करते हैं। उनका शास्त्रार्थ के चैलेन्ज का एक ऐसा ही परचा हमारे पास भी एक सज्जन ने भेजा है जिसमें प्रारम्भ में इन्होंने अपनी प्रशंसा के पुल बांधे हैं और फिर शास्त्रार्थ की कुछ ऊटपटांग शर्तें पेश की हैं। शर्तों की भाषा निम्न प्रकार है:—

"जैसे सनातन धर्म वेद प्रमाणित और युक्तियों से अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये प्रस्तुत है, इसी प्रकार दयानन्द मतावलम्बियों को मेरे नीचे लिखे कतिपय प्रश्नों का समाधान करना चाहिए। स्वामी दयानन्द प्रणीत सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थ सर्वथा वेद विरुद्ध और कपोल-कल्पित है। उक्त ग्रन्थों के कतिपय ऐसे उदाहरण नीचे अंकित करते हैं। यदि किसी दयानन्दी में सामर्थ हो तो वह वेद प्रमाण पूर्वक

" युक्ति युक्त संस्कृत पद्यवद्ध-लिखित उत्तर प्रदान करे।"

हमने जब इस विज्ञाप्रन को देखा तो हमें वहुत आश्चर्य हुआ। माधवाचार्य जी के अधर्म धाम से प्रकाशित शास्त्रार्थ घोषणा का यह विज्ञापन एक ओर हिन्दी में किन्हीं उनके चेले वीराचार्य व प्रेमाचार्य के नाम से छपा है। दूसरी ओर पीठ पर उसी के १२ संस्कृत श्लोक वनाकर नील कण्ठ जी के नाम से घोषणा छपी है। इन तीन नये छोटे२ पहलवानों को मशहूर कराने की भावना से उनके नाम से विज्ञापन निकाला गया है। पं० माधवाचार्य जी स्वयं संस्कृत में पद्य नहीं वना सकते हैं इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि माधवाचार्य को विज्ञापन में भयंकर लिखा है। हम समझते हैं कि विद्वान सौम्य होते हैं और वनैले, पशु व दुष्ट डकैत लोग सज्जनों के लिये भयंकर होते हैं। माधवाचार्य जी को भयंकर वताकर विज्ञापन में साक्षात इनका अपमान किया गया है। इसके अतिरिक्त यदि उन्हें संस्कृत पद्य रचना का आर्य समाजियों का चमत्कार देखने का शौक़ था तो वे किसी संस्कृत कवि सम्मेलन का आयोजन करा सकते थे। जनता भी इनकी कवित्व शक्ति का ज़ायक़ा लेने वहां आजाती। शास्त्रार्थ से और कविता से क्या सम्बन्ध होता है यह हम नहीं समझ सके। संस्कृत में शास्त्रार्थ की बात भी एक धोखा है ताकि जनता न समझ सके कि पौराणिक पण्डित जी की आर्य विद्वानों के द्वारा किस प्रकार धज्जियाँ उड़ाई जाती हैं। आज कल शास्त्रार्थ का तात्पर्य होता है कि शास्त्रीय सिद्धान्तों पर जनता के सामने ऐसी भाषा में वाद-विवाद किया जावे जिसे जनता भी भले प्रकार समझती हो ताकि वह देख व समझ सके कि किस विद्वान का पक्ष सत्य है और किसका गलत है। माधवाचार्य जी सर्वत्र ही कोई न कोई ऐसा ही वहाना या उपद्रव पैदा कर देते हैं जिससे उन की शास्त्रार्थ करने से जान बच जाती है और दोष भी उनके सर न आने पाता है। यही चाल उन्होंने संस्कृत में पद्यबद्ध उत्तर को मांग कर की

हैं ताकि उत्तर को जनता खाक भी न समझ सके और उनके छल कपट पूर्ण ग़लत प्रश्नों से जनता में आर्य समाज के विरुद्ध भावना बन जावे। हम माधवाचार्य जी की भावना को समझते हैं अतः उनके छः प्रश्नों का जो उन्होंने विज्ञापन में पेश किये हैं, उनके नोटिस की छपी हिन्दी भाषा में उत्तर देते हैं। पाठकों को उससे माधवाचार्य जी के पाण्डित्य का खोखलापन एवं आर्य सिद्धान्त की सत्यता को समझने का अवसर मिलेगा। हमें माधवाचार्य जी से भी कहना है कि वे सत्यता पूर्ण प्रश्न जब भी करेंगे उनका गर्मा गरम स्वागत किया जायगा और उत्तर दिया जायगा। साथ ही हम पौराणिक विद्वानों को आमन्त्रित करते हैं कि यदि उनमें पौराणिक सिद्धान्तों के समर्थन करने का साहस है तो वे हमारी सनातन धर्म के खण्डन में प्रकाशित पुस्तकों का उत्तर प्रकाशित करने का साहस दिखावें। हमारी अब तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची इस पुस्तक के अन्त में छपी है।

कासगंज उ० प्र० (भारत वर्ष) डा० श्रीराम आर्य

ता० १-८-६१

पहिला आक्षेप—स्वामी दयानन्द द्वारा प्रणीत सत्यार्थप्रकाश पृ० २४ में लिखा है कि प्रसूता स्त्री केवल छः दिन तक ही बच्चों को दूध पिलावे। पश्चात् धायी पिलाया करे। स्तनों पर कुच कठिन करने वाली औषधि का लेप करे और योनि संकोचक का भी प्रयोग करे इस प्रकार दूसरे प्रकार दूसरे महीने में पुनरपि युवती हो जाती है। यह सब विधान स्वामी जी ने अपने अनुभव के आधार पर लिखा है या वेद के आधार पर। यदि वेद के आधार पर लिखा है तो वेद का प्रमाण बतलाइये।

उत्तर—सत्यार्थप्रकाश में "कुच कठिन करने वाली औषधि का लेप करे और योनि संकोचक औषधि का भी प्रयोग करे।" यह शब्द सर्वथा नहीं हैं। विपक्षी ने ४२० (धोखा) करके अपनी ओर से घुसेड़ दिये हैं। सत्यार्थप्रकाश में इस विषय का वर्णन दूसरे चौथे समुल्लासों में आया है। हम उद्धरण उपस्थित करते हैं।

"ऐसा पदार्थ उसकी माता वा धायी खावे कि जिससे दूध में उत्तम गुण प्राप्त हों। प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावे पश्चात् धायी पिलाया करे। परन्तु धायी को उत्तम प्रदार्थों का खान पान माता पिता करावें। जो कोई दरिद्र हो, धायी को न रख सकें तो वे गाय व बकरी के दूध में उत्तम औषधि जो कि बृद्धि पराक्रम आरोग्य करने हारी हों, उनको शुद्ध जल में भिगो, औटा छान के दूध के समान जल मिला के बालक को पिलावे।.........और जहां धायी, गाय, बकरी आदि का दूध न मिल सके वहाँ जैसा उचित समझे वैसा करे। क्यों कि प्रसूता स्त्री के शरीर के अंश से बालक का शरीर होता है, इसी से स्त्री प्रसव समय निर्बल हो जाती है, इसलिए प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे। दूध रोकने के लिए स्तन के छिद्र पर उस औषधि का लेप करे जिससे दूध स्रवित न हो। ऐसा करने से दूसरे महीने में

पुनरपि युवती हो जाती है। तब तक पुरुष ब्रह्मचर्य से वीर्य का निग्रह रखे, इस प्रकार जो स्त्री वा पुरुष करेंगे उनके उत्तम सन्तान, दीर्घायु बल पराक्रम की वृद्धि होती ही रहेगी कि जिससे सब सन्तान उत्तम बल पराक्रमयुक्त, दीर्घायु, धार्मिक हों। स्त्री योनि संकोचन, शोधन और पुरुष वीर्य का स्तम्भन करे। पुनः सन्तान जितने होंगे वे भी सब उत्तम होंगे। (सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास)।

"जब सन्तान का जन्म हो तब स्त्री और लड़के के शरीर की रक्षा बहुत सावधानी से करे, अर्थात् शुण्ठीपाक अथवा सौभाग्य शुण्ठीपाक प्रथम ही बनवा रखे। उस समय सुगन्धियुक्त उष्ण जल को जो कि किंचित उष्ण रहा हो, उसी से स्त्री स्नान करे और बालक को भी स्नान करावे। तत्पश्चात् नाड़ी छेदन बालक की नाभि के जड़ में एक कोमल सूत से बाँध चार अंगुल छोड़ के ऊपर से काट डाले।........जो दूध पीना चाहे तो उसकी माता पिलावे। जो उसकी माता के दूध न हो तो किसी स्त्री की परीक्षा करके उसका दूध पिलावे।........छः दिन तक माता का दूध पिये और स्त्री भी अपने शरीर की पुष्टि के अर्थ अनेक प्रकार के उत्तम भोजन करे।..............................छटे दिन स्त्री बाहर निकले और सन्तान के दूध पीने के लिए कोई धायी रखे। इसको खान पान अच्छा करावे। वह सन्तान को दूध पिलाया करे और पालन भी करे परन्तु उसकी माता लड़के पर पूर्ण दृष्टि रखे किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार उसके पालन में न हो। स्त्री दूध बन्द करने के अर्थ स्तन के अग्रभाग पर ऐसा लेप करे कि जिससे दूध स्रवित न हो। उसी प्रकार का खान पान व्यवहार भी यथा योग्य रखे।" (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ४)

सत्यार्थप्रकाश के उक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रश्नकर्ता ने आक्षेप करने में छल कपट से काम लिया है। उसका आक्षेप उक्त विषय में नहीं बनता है। प्रसूता स्त्री की दशा बहुत कमजोर होती है, अतः

सत्यार्थप्रकाश में उसके लिए सुधावर्धक–पाचक–गर्भाशय के दोषों को निवारण करने वाले आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध शुण्ठीपाक के सेवन कराने का विधान किया गया है। उसे पौष्टिक उत्तम आहार देकर स्वास्थ्य लाभ करने की प्रेरणा दी गई है। ताकि रक्तस्राव एवं बालक के बाहर आने पर शरीर के अङ्गोपाङ्गों में जो शिथिलता आ जाती है वह दूर की जा सके सत्यार्थप्रकाश में योनि संकोचक औषधि के प्रयोग करने का कोई शब्द नहीं है। पर यह तो प्रत्यक्ष है कि बालक के प्रसव से गर्भाशय एवं प्रसव मार्ग अशुद्ध एवं विस्तृत हो जाते हैं। दाइयाँ तथा प्रसवालयों में शराव के फायों का प्रयोग प्रसूता के शरीर के संकोचनार्थ किया जाता है। यदि ऐसा नहीं किया जावेगा तो नारी की कमर का दर्द एवं शारीरिक शिथिलता बहुत दिनों तक उसके कष्ट का कारण बनी रहेगी यह चिकित्सा एवं सन्तान शास्त्र का विषय है। नारी के स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए उपरोक्त प्रकार के उपदेश दिए गए हैं। बालक को दूध पिलाने के लिए सुयोग्य धाया रखने का विधान भारत में प्राचीनकाल से सदैव रहा है। भगवान मर्यादा पुरुषोत्तमराम को भी धाया ने पाला था। यूरोपियन देशों में सभी समर्थ लोग धाया रखते हैं। धाया ही बालक को दूध पिलाती है। यह विषय आयुर्वेद का है कि किस आयु में बालक को कैसा दूध पिलाना चाहिए, कैसे वस्त्र पहिनाने एवं कैसा भोजन देना चाहिये। अतः वैद्यक ग्रन्थकारों ने धाया रखने का आदेश दिया है। यथा—

"अतो धात्री परीक्षामुपदेश्यामः—अथ ब्रूयात् धात्रीमानयेति, समानवर्णां यौवनस्थां निभृतामनातुरामव्यङ्गामव्यसनाम विरूपाम जुगुप्सितां देशजातीयामक्षुद्र कर्मिणी कुलेजाता वत्सलां जीवद्वत्सां पुंवत्सां दोग्ध्रीम प्रमत्ताम शायिनी मनुच्चार शायिनी मनन्त्यावशायिनीं कुशलोपचारां शुचमशुचिद्वेषिणी स्तनस्तन्य संपदयेतामिति ॥ ५३ ॥

अर्थ---इसके अनन्तर धात्री की परीक्षा का उपदेश करते हैं। अब आज्ञा देवे कि धात्री लाओ तो धायी माता के समान जाति वाली युवावस्था में विद्यमान, नम्रत्वभाव, नीरोग, सुघड़ अङ्गों वाली, सब प्रकार के व्यसनों से रहित, सुन्दर, रूपवती, घृणा योग्य रूप से रहित जो मैली कुचैली न रहती हो, समान देश वाली, उदार चित्त वाली, घिनौने कमीने विचारों और कर्मों से रहित, नीचकर्म न करने वाली, उत्तम कुल में उत्पन्न, बच्चे से प्यार करने वाली, प्रमाद से रहित, न सोने वाली, बालक को मूत्रादि में न लिटाने वाली, नीच चाण्डाल कुलों से भिन्न कुल की, सेवा में कुशल, पवित्र, स्वच्छ, स्तन और दूध के उत्तम गुणों से युक्त स्त्री को धायी के रूप में नियुक्त करे।

धात्री तु यदा स्वादु बहुल शुद्ध दुग्धा स्यात्तदा स्नातानु लिप्ता शुक्ल वस्त्रं परिधायैन्द्रीं ब्राह्मीं शतवीर्याम मोघामव्यथां शिवामरिष्ठां वाट्य पुष्पी विष्वक्सैन कान्तां वा विभ्रत्योषधिं कुमारं प्राङ्ग मुखं प्रथमं दक्षिणं स्तनं पाययेदिति धात्री कर्म ॥ ५६॥

(चरक शारीरिक स्थान अ० ८)

अर्थात् धात्री की नियुक्ति---जिस समय धात्री का दूध बहुत स्वाद, बहुत शुद्ध हो, उस दिन स्नान कराके चन्दन लगा के, सफेद वस्त्र पहिना के, ऐन्द्री, ब्राह्मी, शतावर, सहस्त्र वीर्या, अमोघा, गिलोय-शिरा, वाट्य पुष्पी, अरिष्ठा, विष्वक्सैन कान्ता आदि औषधियों को धारण कराकर, शिशु का शिर पूर्व की ओर करके पहिले दाहिना स्तन पीने को देना चाहिए। यह धात्री कर्म का उपदेश है।

इसी प्रकार धाय रखने का उपदेश सुश्रुत संहिता शारीरिक स्थान अ १० में है। भाव प्रकाश में भी 'बालरोग चिकित्सायां तत्र संशोधने पूर्वं धात्री स्तम्यं शोधयेत' लिख कर बालक की धाय के दुग्ध शोधन का विधान किया है। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने वेद के

उपाँग आयुर्वेद के आधार पर प्रसूता के स्वास्थ्य संरक्षण एवं बालक की योग्य पालना के लिए धाया रखने का विधान किया है तो इससे सनातन धर्म पर कौनसा वज्र पड़ गया और कौन से वैदिक सिद्धान्त की हानि हो गई।

इसलिए जो लोग धाया रख सकते हैं वे अवश्य रखें, पर जो नहीं रख सकते हैं तो उनके लिए धाया न रखना कोई पाप नहीं है। सत्यार्थ प्रकाश का तो आम उपदेश है जो पालन करेंगे वे उससे लाभ उठावेंगे। वेद में भी—

'नक्तोषासा समनसा विरुपे धपयेते शिशुमेकं''
(यजुर्वेद अ० १२ मंत्र २)

में लिखा है कि (शिशुमेकं) एक बालक को (नक्तोषासा) रात और दिन की वेला के समान (विरूपे) माता और धाय (धापयेते) दूध पिलाती है (समनसा) वे दोनों समान मन व विचार वाली होती हैं।

वेदों में अनेक स्थानों में धाय के दूध पिलाने का वर्णन आता है। वेद एवं उसके उपाङ्ग आयुर्वेद दोनों से ही बालक के लिए धाय रखने का विधान सिद्ध है और उससे स्वामी दयानन्द जी महाराज का आदेश समर्पित है।

जब बालक को माता धाय के सुपुर्द कर देती है तो अपने दूध को रोकने के लिए यदि स्तन पर औषधि लगाई जावे तो उचित ही होगा, अन्यथा दुग्ध स्रवित होकर माता के वस्त्रों को खराब करेगा। तो सत्यार्थ प्रकाश में यह लिख देना कि दुग्ध के गिरने को रोकने के लिए औषधि का प्रयोग माता को ठीक ही है। विपक्षी की बुद्धि सनातनियों के घर के माल खाते २ बादी चढ़ जाने से मोटी पड़ गई है। इसीलिए सत्यार्थ प्रकाश में दूध का बहना व बनना रोकने के लिए दवा

का लेप करने का विधान लिखा देखकर विपक्षी उसे कुच कठोर करने वाली दवा का प्रयोग समझते हैं यह उनकी महज़ नादानी है। सत्यार्थ प्रकाश की बात को समझने के लिए अक्ल चाहिए परन्तु विपक्षी तो अक्ल से दुश्मनी रखते हैं। तो फिर वह स्वामी दयानन्द की बात को कैसे समझेंगे। हां यदि विपक्षी को अपनी किसी प्रेयसी के कुच कठोर एवं योनि संकोचन कराने की चिन्ता हो तो हमारा परामर्श है कि वह उसे किसी डाक्टर या वैद्य को दिखाकर इलाज करवा लें। हम उसकी इस मामले में मदद नहीं कर सकेंगे। अथवा पुराणों में जो योनि संकोचन के नुस्खे लिखे हैं, उनको आजमा लेवें।

विपक्षी ने इस प्रश्न में एक छल और भी किया है। उन्होंने लिखा है कि 'प्रसूता स्त्री केवल ६ दिन तक ही बच्चे को दूध पिलावे' इसमें 'ही' शब्द विपक्षी की मिलावट है। ऋषि की व्यवस्था है कि प्रसूता स्त्री ६ वे दिन जब प्रसूत गृह से बाहर निकले तो बच्चे को पहिले से निश्चित की हुई धाय को दे देवे। चरक संहिता में १० वें दिन धाय से नाम करण संस्कार के समय दूध पिलवाने का आदेश है। (देखो चरक शारीर स्थान ८–५१ व ५३) इसी प्रकार सुश्रुत में भी विधान मौजूद है। धाय १० वें दिन से लगाई जाय या छठे दिन से, इससे इस सिद्धान्त पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। जो धाय रख सकते हैं वे इस व्यवस्था से लाभ उठावेंगे, जो असमर्थ हैं उनके लिए यह व्यवस्था नहीं है। धात्री योजना बालक व प्रसूता दोनों के ही लिए हितकर होती हैं। यदि माता पर दूध न हो या दूषित हो तो प्रसवोपरान्त तत्काल धायी लगाई जा सकती है। छठे दिन की कोई क़ैद नहीं होती है।—

इस प्रकार हमने दिखाया है कि स्वामी जी का लेख बुद्धि पूर्वक स्वास्थ्य विज्ञान एवं वेद के उपाङ्ग आयुर्वेद के आधार पर है और सर्वांश में सत्य है। विपक्षी का आक्षेप ग़लत है।

स्त्री को जब दूध नहीं पिलाना पड़ेगा साथ ही पौष्टिक भोजन व औषधियों का सेवन १ या २ माह तक करेगी तो प्रसव जन्य निर्बलता दूर हो जाने से वह पुनः युवती (पूर्ण स्वस्थ) स्वयं ही हो जावेगी। प्रसव के पश्चात् गर्भाशय का शोधन करना आवश्यक होता है ताकि प्रसूत के दोष शरीर से निकल जावे। शफ़ाखानों में ड्रेशिंग द्वारा गर्भाशय की प्रसवोपरान्त सफाई करा दी जाती है। शायद विपक्षी अपनी स्त्रियों की सफाई न कराकर उन्हें गन्दी ही रहने देते होंगे और नया बच्चा बनाने में जुट पड़ते होंगे।

दूसरा आक्षेप—सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास १० पृ० २८५ में लिखा है कि उष्णदेश हो तो शिखा सहित छेदन कराना चाहिए। शिखा के कारण गर्मी से बुद्धि कम हो जायगी। यह लेख किस वेद प्रमाण से प्रमाणित है ? तथा यदि पुरुष के थोड़े से बालों से कथित अनर्थ की सम्भावना है तो फिर स्त्रियों का क्या बनेगा ? इस तरह सबको मुण्डित ही होना पड़ेगा, इसका भी उत्तर दीजिये।

उत्तर—विपक्षी के इस एक प्रश्न में तीन प्रश्न सम्मिलित हैं (क) उष्ण देश में शिखा सहित बाल मुड़ाने के विधान का प्रमाण (ख) शिखा से गर्म देश में बुद्धि कम होने का प्रमाण (ग) स्त्रियों को भी बाल कटाने चाहिये या नहीं।—हम इन प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करते हैं।

चोटी सर के ऊपर कोई विशेष रूप से उत्पन्न होने वाली वस्तु नहीं है। बाल सारे सर पर पैदा होते हैं। उन्हीं में सर के एक विशेष भाग में थोड़े बालों को शेष बालों की अपेक्षा लम्बा सुरक्षित बालों को चोटी कहते हैं। मोटे रूप से तो यह कहा जाता है कि चोटी हिन्दू होने का साइन बोर्ड है। अतः प्रत्येक हिन्दू को चोटी धारण करानी चाहिए। इसी भावना से सारे ही हिन्दू चोटी रखते हैं। पर इसके

अन्दर एक वैज्ञानिक रहस्य भी है। हमारी रीढ़ की हड्डी के अन्दर एक नाड़ी रहती है, उसे सुषुम्ना नाड़ी कहा जाता है। शरीर के अन्दर जितनी भी वात सम्बन्धी नसें हैं जिन्हें Nerwes कहते हैं। वह सारा वात संस्थान Nerwes system इसी सुषुम्ना नाड़ी से संचालित होता है। सुषुम्ना का ऊपर का केन्द्र सर के उस भाग में जाकर अन्त होता है जहां पर हमारे शास्त्रों में चोटी रखने का विधान है। और उस स्थान से निकल कर प्रथक वात नाड़ियां सर व चेहरे के भिन्न २ भागों में फैलती हैं। सर के सुषुम्ना केन्द्र के स्थान पर हमारे लघु मस्तिष्क का स्थान है तिसमें हमारे जन्म जन्मान्तरों के अनेक संस्कार संग्रहीत रहते हैं। स्वप्नावस्था में हम जो स्वप्न देखते हैं वह लघु मस्तिष्क का ही कार्य होता है। लघु मस्तिष्क आकार में गौ के खुर के समान होता है, इसीलिए गौ खुर के बराबर चोटी रखने का अपने यहां का विधान है। सर के बाल हमारे सर की सर्दी से रक्षा करते हैं। वालों का गुण उष्णता युक्त होता है। ऊनी वस्त्र जो वालों से ही बने होते हैं सर्दियों में इसीलिए शीत से शरीर की रक्षा के लिए प्रयोग किए जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति गर्मियों में ऊनी वस्त्र पहिनने लगे या कम्वल ओढ़ कर निकले तो लोग उसे इसीलिए मूर्ख कहते हैं कि ऊन (वालों) के वस्त्र गर्मी में बहुत गर्मी पहुंचाते हैं। हमारे विपक्षी भी यदि ऊनी टोपी या ऊनी साफ़ा बांध कर गर्मियों में निकलेंगे तो निश्चय ही वह पागल हो जावेंगे। ऊन की गर्मी से उनका दिमाग खराब हो जावेगा। जाड़ों या शीत प्रधान देशों में रहने वाले पशुओं के शरीर के बाल इसी घने व बड़े ईश्वरी नियम से होते हैं। इसी प्रकार सर पर चोटी रखने का उद्देश्य भी लघु मस्तिष्क एवं सुषुम्ना केन्द्र की सर्दी से रक्षा करना होता है। सर्दी के मौसम में अन्दर की ऊष्मा भी शीत का प्रतिरोध करने के लिए प्राकृतिक नियमानुसार बढ़ जाती है और सर की एवं दिमाग की रक्षा करने में

उसे सर के बालों से सहायता मिलती है। जो लोग सारे सर पर बाल नहीं भी रखते हैं उन्हें भी लघु मस्तिष्क एवं सुषुम्ना केन्द्र की रक्षा में चोटी के बालों से सहायता मिलती है। इसीलिए ऋषि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि "ब्राह्मण के सोलहवें, क्षत्रिय के बाईसवें और वैश्य के चौवीसवें वर्ष में केशान्त कर्म और क्षौर मुण्डन हो जाना चाहिए। अर्थात इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रख के अन्य दाढ़ी मूँछ और शिर के बाल सदा मुडवाते रहना चाहिए अर्थात् पुन: कभी न रखना चाहिए। और जो शीत प्रधान देश हो तो क़ामाचार है चाहे जितने केश रखे। और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिए। क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है। दाढ़ी मूँछ रखने से भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ठ भी बालों में रह जाता है।"

ऋषि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में मनु के 'केशान्त: षोड़शे वर्षे' श्लोक के अर्थ करते हुए उपरोक्त विचार प्रगट किये हैं। ऋषि का लिखना कि बालों के रखने से जो गर्मी उष्ण ऋतु में पैदा होगी उससे बुद्धि कम हो जावेगी सर्वथा सत्य है। दिमाग में गर्मी पहुँचने से बुद्धि कम ही नहीं होगी बल्कि पागलपन भी पैदा होगा। (सैकड़ों सनातनी इससे पागल हो चुके हैं) इसीलिए दिमाग को तर (ठंण्डा) रखने के लिए सर पर ब्राह्मी-आँवला आदि तेलों का प्रयोग एवं ऊपर की बाहरी गर्मी से रक्षा करने को टोपी पहिनने का विधान है। यह तो साधारण बुद्धि की एवं आयुर्वेद विज्ञान की बात है। इसे हर कोई जानता है। विपक्षी पौराणिकों में अक्ल की इतनी कमी होती है कि वे इतनी मामूली सी बात भी नहीं समझ सकते हैं। चोटी रखना या न रखना, कब रखना, कब न रखना, कितनी बड़ी रखना, कहाँ पर रखना यह सब आयुर्वेद विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली

वातें हैं। इसी प्रकार कब कैसे वस्त्र पहिनना, कैसा भोजन करना किस वस्तु का प्रयोग कब न करना यह भी स्वास्थ्य विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली बात है।

ईश्वर ने स्त्री व पुरुष के शरीरों की बनावट में भिन्नता रखी है। स्त्री आग के साथ काम कर सकती है, हँसते-हँसते आग में अपना शरीर भस्म कर देती है सहज में आग को हाथ से पकड़ कर हटा देती है पर पुरुष वैसा नहीं कर सकता है। आपने कभी किसी पुरुष को तेल डाल कर अपने को जलाते हुए नहीं सुना होगा। स्त्री चिता में पति के साथ बैठ कर जलती जाती है और बात भी करती जाती है यह सती देवियों की घटनायें अपने देश में बहुधा देखी जाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि स्त्री पुरुष के शरीरों की भिन्नता के साथ ईश्वर ने स्त्री को उष्णता को सहन करने की स्वाभाविक शक्ति प्रदान की है। आपको जितने पुरुष पागल मिलेंगे उनकी अपेक्षा स्त्रियाँ बहुत कम पागल मिलेंगी। जो भी स्त्रियां पागल मिलेंगी वे दुःख शोक एवं मासिक धर्म के विकारों के कारण पागल हुई मिलेंगी स्त्री के शरीर की विद्युत पुरुष के शरीर की विद्युत से विपरीत प्रकार की होती है। यही कारण है कि एक दूसरे की ओर स्वभावतया प्राकृतिक नियमानुसार आकर्षित होते हैं। घोर सर्दी में स्त्री साधारण से सूती वस्त्र को धारण करके शीत को अनुभव नहीं करती है पर पुरुष ऊनी वस्त्रों को लपेट कर भी शीत में काँपता नजर आता है। इन दृष्टान्तों से सिद्ध है कि स्त्री के सर पर बालों का रहना उसके स्वास्थ्य के लिए हानि कारक नहीं हो सकता है वरन् लाभकारी सिद्ध होता है। जब कि पुरुष के लिए गर्मी में बालों का रखना हानि कारक होता है।

शास्त्रों में भी चोटी धारण करना एवं उसे कटा देने का विधान अनेक अवसरों पर लिखा है जिससे यह सिद्ध है कि चोटी काटने

में कोई दोष नहीं है। हम इस सम्बन्ध में कतिपय शास्त्रीय प्रमाण आगे उपस्थित करते हैं।

यजुर्वेद अ० १७ के मन्त्र ४८ में 'विशिखा इव' पद आता है। इसका अर्थ महर्षि दयानन्द जी महाराज ने किया है—'विगत शिखा विविध सिखावा'।

अर्थात्—शिखा रहित अथवा बहुत शिखा वाले।

इस पर महीधराचार्य ने अर्थ किया है—'शिखा रहिता मुण्डित मुण्डाः' शिखा रहित मुंडित तथा उव्वट ने–विगत शिखा–सर्वमुण्डा' बिना शिखा के–सर्वमुण्डा लिखा है।

पारस्कर गृह्य सूत्रके 'यथा मंगलकेशेषु करणम् (पा० गृ० सू० २।१।१२) पर हरिहर भाष्य में 'मुण्डाभृगवः' पद लिखकर बताया है कि भृगुगोत्र वाले शिखा सहित सर मुड़ा देवें।

पराशर स्मृति ९–१४ में लिखा है:—

पादेऽङ्गरोवयनं द्विपादेश्मश्रुणोऽपिच।
त्रिपादेतु शिखावर्ज्यं स शिखंतु निपातेन॥

अर्थ—पाद कृच्छ्र प्रायश्चित में शरीर के रोम मुडावें, आधे कृच्छ्रवृत्त में दाढ़ी मूँछ भी मुंड़ा दे। त्रिपाद वृत्त में शिखा को छोड़कर मुंड़ावे और पूरे कृच्छ्रवृत्त में शिखा सहित वालों को मुंडा दे।

गौतम स्मृति ३।११ में लिखा है—

मुण्डः शिखी वा वर्ज्जयेज्जीववधम्॥

अर्थ—शिर के सब बाल मुड़ाया करे अथवा केवल चोटी रखे, जीवों की हिंसा न करे। कात्यायन ने लिखा है:—

स शिखं वपनं कार्यमा स्नानात् ब्रह्मचारिणा॥
आशरीर विमोक्षाय ब्रह्मचर्यं नचेद् भवेत्॥ खं २५।१४॥

अर्थात्—शिखा सहित बाल कटवा देवे समावर्तन तक। और ब्रह्मचर्य न हो तो मृत्यु पर्यन्त कटवाता रहे।

शिव पुराण वायु सं० उ० खं० अ १८ श्लो० ३८ व ३९ में–

"कुर्यात्तस्य शिखाच्छेदं" कह कर चोटी काटने का आदेश दिया गया है।

आपस्तम्व स्मृति में लिखा है।—

सरोमं प्रथमे पादे द्वतीयेश्मश्रु धारणम् ॥३२॥
तृतीयेतु शिखाधार्या सशिखंतुनिपातने ॥ ३३ (अ०१)

प्रायश्चित का प्रथम पाद रोमों का है, दूसरा पाद दाढ़ी को धारण करने का है, तीसरा पाद शिखा धारण करने का है और चौथे पाद में शिखा समेत पुरुष का मुण्डन कहा है। सामश्रमी जी ने– गोभिज गृ० सू० खं० १० सू ४७ के निम्नपद की टीका निम्न प्रकार की है।—

ब्रह्मचारी केशान्तान कारयते। सर्वाङ्ग लोमानि संहारयते "ब्रह्मचारी ब्रह्मवेदः तद् गृहणाचार विशिष्ठाः आद्याश्रमी यदैव केशान्तान कारयते तदैव सर्वाणि अँगलोमानि संहारयते। कक्ष वक्षो पस्थ शिखा केशानि वापयेदित्यर्थः।"

अर्थात्—ब्रह्म नाम वेद के आचार को धारण करने वाला ब्रह्मचारी-प्रथम आश्रम वाला जब भी केशान्त कराये तब ही सब लोगों को बगल-छाती, उपस्थेन्द्रिय, शिखा आदि सभी के बालों को कटवा देवे।

इसी प्रकार के सनातन धर्म के मान्य शास्त्रों के दर्जनों प्रमाण हम उपस्थित कर सकते हैं जिनमें चोटी को भिन्न २ अवसरों पर कटा देने का विधान किया गया है। इससे हमने यह सिद्ध किया है कि

चोटी सहित सर मुड़ा देने में कोई शास्त्रीय आदेश बाधक नहीं है। लाखों सनातनी चोटी नहीं रखते हैं, लाखों लोगों के सर के चोटी के स्थल के बाल उड़ जाते हैं तो क्या वे वैदिक धर्मी या सनातनी न होकर ईसाई माने जावेंगे। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने भी विशेष उष्ण-देश होने की अवस्था में शिखा सहित सर मुड़ा देने की बात लिखी है वह भी सनातन धर्म के मान्य शास्त्रों की अन्य अवस्थाओं के समान एक विशेष परिस्थिति में ही लागू होती है। साधारणतया वैसे तो शिखा धारण करने का आदेश ऋषि के लेख में सत्यार्थ प्रकाश में वर्तमान ही है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि चोटी रखना न रखना आयुर्वेद के अनुसार शरीर को निरोग रखने से सम्बन्धित विषय है और उसका वेद एवं विपक्षी के मान्य पौराणिक शास्त्रों से समर्थन होता है। जैसे गर्मी में ऊनी गर्म वस्त्र पहिनना हानिकारक होने से निषिद्ध है वैसे ही बालों का या चोटी का अधिक गर्मी में धारण करना बुद्धि को कम करने का कारण बनेगा। स्त्रियों को सर के बाल कटाने का विधान वैदिक शास्त्रों में हमको नहीं मिला है। यदि पुराणों में हो तो विपक्षी पं० माधवाचार्य जी अपनी घुटी चांद की तरह अपने परिवार की स्त्रियों के भी सर मुंडवा सकेंगे। हमें इस पर भी कोई आपत्ति नहीं होगी। हम उनको अभी से इसका पेशगी आश्वासन देते हैं।

तीसरा आक्षेप—सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ४ पृ० ९३ में लिखा है कि—विवाह से पूर्व कन्या वर का फोटो एक दूसरे को दिखाकर स्वीकृति लेनी चाहिए और वे आपस में एक दूसरे से गुप्त व्यवहार भी पूँछ लें तथा संस्कार विधि पृ० १३५ का आशय है कि विवाह से पूर्व वर कन्या स्नानागार में इकट्ठे स्नान करते हुए एक दूसरे की मूत्रेन्द्रिय पर जल डालना, इत्यादि। ये अश्लील बातें कौन से वेद में लिखी हैं।

उत्तर—सभ्य आदमियों को झूँठ बोलने में शर्म मालूम होती है, परन्तु इन पौराणिक पण्डितों को झूँठ लिखने में कोई लज्जा अनुभव नहीं होती है। उनमें भी पं० माधवाचार्य जी व उनके चेले तो साक्षात् प्रपन्चियों में शिरोमणि हैं। इन लोगों को तो इनकी नानी ने घुट्टी में झूँठ बोलना, प्रपंच रचना, एवं पाखण्ड फैला करके पैसा पैदा करना पिलाया था। जैसे कोयला सौमन साबुन से धोने पर भी सफेद नहीं होता है ऐसे ही इन लोगों से सत्य व्यवहार की आशा करना वेकार है। इस विषय में सत्यार्थ प्रकाश का लेख इस प्रकार है।

"इसलिए यही निश्चय रखना चाहिए कि कन्या और वर का विवाह के पूर्व एकान्त में मेल न होना चाहिए। क्योंकि युवावस्था में स्त्री पुरुष का एकान्त वास दूषण कारक है। परन्तु जब कन्या वा वर के विवाह का समय हो अर्थात् जब एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्य आश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहे तब तक कन्या और कुमारों का प्रतिविम्ब अर्थात् जिसको फोटो ग्राफ कहते हैं अथवा प्रति कृति उतार के कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की, कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिकृति भेज देवें। जिस २ का रूप मिल जाय उस २ के इतिहास अर्थात् जो जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्म चरित्रका पुस्तक हो, उनको अध्यापक लोग मँगवा के देखें। जब दोनों के गुण कर्म स्वभाव सदृश्य हों तब जिस २ के साथ जिस २ का विवाह होना योग्य समझें, उस २ पुरुष और कन्या का प्रतिविम्ब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में दे देवें और कहें कि इसमें जो तुम्हारा अभिप्राय हो सो हमको विदित कर देना। जब इन दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाय तब उन दोनों का समावर्तन एक ही समय में होवे। जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहें तो वहाँ, नहीं तो कन्या

के माता पिता के घर में विवाह होना योग्य है। जब वे समक्ष हों तब उन अध्यापकों वा कन्या के माता पिता आदि भद्र पुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बातचीत, शास्त्रार्थ कराना और जो कुछ गुप्त व्यवहार पूंछे सो भी सभा में लिख के एक दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें। जब दोनों का दृढ़ प्रेम विवाह करने में हो जाय तब से उनके खान पान का उत्तम प्रबन्ध होना चाहिए कि जिससे उनका शरीर जो पूर्व ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययन रूप तपश्चर्या और कष्ट से दुर्बल होता है वह चन्द्रमा की कला के समान बढ़ के थोड़े ही दिनों में पुष्ट हो जाय।"

इतनी व्यवस्था लिखने के पश्चात ऋषि ने आगे विवाह संस्कार करने व उसके पश्चात एकान्त सेवन की आज्ञा दी है। इस ऊपर के सत्यार्थ प्रकाश के पूरे लेख से स्पष्ट है कि आक्षेपक के इस वाक्य में—

"और वे आपस में एक दूसरे से गुप्त व्यवहार भी पूंछ लें" छल किया गया है। आक्षेपक का आशय यह दिखाना है कि ऋषि ने आदेश दिया है कि वर व कन्या अवश्य गुप्त व्यवहार 'भी' पूंछे। जब कि ऋषि के शब्द हैं कि "और जो कुछ गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभा में लिख के एक दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें।"— इसमें ऋषि आदेश नहीं दे रहे हैं बल्कि यह व्यवस्था की है कि यदि वर व कन्या एक दूसरे के सम्बन्ध में कोई बात ऐसी पूछना या कहना चाहें अथवा अपने भावी जीवन के सम्बन्ध में कोई प्रतिज्ञा कराना चाहें जो सबके सामने पूछने में संकोच करें तो पत्र में लिख कर एक दूसरे से प्रश्न कर सकेंगे। इसमें आक्षेप को कोई स्थान नहीं है। पर प्रश्न कर्ता को शरारत करनी इष्ट है अतः उसने संस्कार विधि के नाम से सर्वथा झूठी बात लिख मारी है कि वर कन्या स्नानागार में इकठ्ठे स्नान करते हुए एक दूसरे की गुप्तेन्द्रियों पर पानी डालें। संस्कार

विधि में इस प्रकार न कोई स्नानादि करने की व्यवस्था है न यह प्रश्न कर्ता की ऊट पटांग भाषा उसमें दी है। ऋषि का तो स्पष्ट लेख है कि "कन्या और वर का विवाह से पूर्व एकान्त में मेल न होना चाहिए क्योंकि युवावस्था में स्त्री पुरुष का एकान्तवास दूषण कारक है।" ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट है कि प्रश्न कर्ता की मनोवृत्ति गन्दी है। वह पक्के जाल साज भी हैं। वह सत्यार्थप्रकाश और संस्कार विधि के बारे में ऐसी झूठी बातें अपने दूषित मन से गढ़ कर लिखते हैं जो उन ग्रन्थों में नहीं हैं, और न उन ग्रन्थों के किसी भी स्थल से ऐसा भाव निकलता है।

हां, सनातन धर्म में तो अवश्य ऐसी व्यवस्था मौजूद है और तदनुसार सनातनी भक्त व पौराणिक पंडित लोग अपने बाबा महादेव के लिंग व अपनी पार्वती मैया की भग (शिवलिंग व जलहरी) को रोजाना पानी डाल कर मल २ कर हाथों से धोया करते हैं। बाबा व मैया की सेवा का सनातनी तरीका भी विचित्र है। ब्रह्मा जी महादेव व पारवती का विवाह कराने बैठे तो पार्वती के पैरों की खूब सूरती देख कर यज्ञ वेदी पर उनका वीर्यपात हो गया। उसे छिपाने को उन्होंने पैरों से मसल डाला व उपस्थेन्द्रिय को टांगों में छिपा लिया।

(शिव पुराण)

—शिव जी का वीर्य पीने का विधान—

तृतीयं तत्परं स्थानं केदारं चेति विश्रुतम्।
मच्छरीराद्विनिष्क्रान्तं शुक्राख्यं पान मुत्तमम् ॥१२॥

शिव जी कहते हैं—इसके आगे केदार नामक स्थान है। वह मेरे शरीर से निकला हुआ वीर्य है और पीने के योग्य है।

हमारे विपक्षिग्रों ने उसको ग्रवश्य पिया होगा। वह बतावें कि वीर्य पीना व पेशाब पीना सनातन धर्म में परम धर्म क्यों माना जाता है ?

स्त्री को लिंग व अण्डकोष खिलाना

अस्वादितं न चान्येन भक्ष्यार्थे च ददाम्यहम् ॥ १२५
अधोभागे चमेनाभेर्वर्तुलौ फल सन्निभौ ॥
भक्ष्यध्वं हि सहिता लम्बौ मे वृषणावुभौ ॥ १२६ ॥
अनेन चापि भोज्येन परातृप्तिर्भविष्यति ॥ १२७ ॥

(पद्म पु० सृष्टि खं० अ २७ पूना)

शिवजी ने एक औरत से कहा कि मेरी नाभि के नीचे दो गोल फल आलम्ब सहित मौजूद हैं, इन अण्ड कोषों को तुम खालो तो सदा के लिए भूख से तृप्त हो जाओगी। इनका अभी तक किसी अन्य ने जायका नहीं लिया है।

विपक्षी बतावें कि शिवजी का औरतों की भूख मिटाने का यह सनातनी नुस्खा किस वेद के अनुकूल है। और क्या कभी विपक्षियों ने अपने परिवारों में सदा के लिए भूख मिटाने के निमित्त इस खुराक का परीक्षण किया है ? सनातन धर्म में स्त्रियों को भोजन देने की शिवजी की व्यवस्था छपवाकर बटवानी चाहिए।

हमारा परामर्श है कि विपक्षी सोच समझ कर आक्षेप किया करें तो ठीक है वरना सनातन धर्म की सारी पोल हम खोल कर रख देंगे।

चौथा आक्षेप—सत्यार्थ प्रकाश चतुर्थ समुल्लास पृ० १२३ पर लिखा है कि पति के मर जाने पर (उसका शव जलाने से पूर्व ही) आर्य समाजी अंगुली निर्देश पूर्वक विधवा से कहें कि तू इस मरे हुए पति की आशा छोड़ कर हम जीवितों में से किसी को वर ले। यह पशुधर्म किस वेद में लिखा है ?

उत्तर—विपक्षी ने प्रश्न करने में छल से काम लिया है। उसने सत्यार्थ प्रकाश के अन्दर दिए गए वेद मंत्र के अर्थों को ग़लत रूप में एवं अपनी भाषा उसमें घुसेड़ कर ऊट पटांग तरीके पर पेश किया है। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने वेद मन्त्र नियोग के पक्ष में प्रस्तुत किया है:—

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गता सुमेत मुप शेष एहि।
हस्त ग्रामस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥
(ऋ० मं० १०।सू १२।मं० ८)

यही मन्त्र ऋषि ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में 'नियोग' के प्रकरण में लिखा है। वहाँ पर ऋषि ने इस मन्त्र का अर्थ करते हुए लिखा है।

(उदीर्ष्व नारी) हे स्त्रि ! अपने मृतक पति को छोड़ के (अभिजीवलोकं) इस जीव लोक में (एत मुपशेष एहि) जो तेरी इच्छा हो तो दूसरे पुरुष के साथ नियोग करके सन्तानों को प्राप्त हो। नहीं तो ब्रह्मचर्य आश्रम में स्थिर होकर कन्या और स्त्रियों को पढ़ाया कर। और जो नियोग धर्म में स्थित हो तो जब तक मरण न हो तब तक ईश्वर का ध्यान और सत्य धर्म के अनुष्ठान में प्रवृत्त होकर (हस्त ग्रामस्य दिधिषोः) जो कि तेरा हस्त ग्रहण करने वाला दूसरा पति है उसकी सेवा किया कर वह तेरी सेवा किया करे और उसका नाम विधिषु है। (तवेदं) वह तेरे सन्तान की उत्पत्ति करने वाला हो, जो

तेरे लिए नियोग किया गया हो तो वह तेरी सन्तान हो (पत्युर्जनित्वम) और जो नियुक्त पति के लिए नियोग हुआ हो तो वह सन्तान पुरुष का हो। इस प्रकार नियोग से उत्पन्न सन्तानों को उत्पन्न करके दोनों सदा सुखी रहो।

ऋषि दयानन्द जी का भाव बहुत स्पष्ट है कि विधवा होने पर स्त्री को संयम से रहते हुए कन्याओं व स्त्रियों को शिक्षा देना आदि कार्यों को करने में अपने मन को लगाना चाहिए। किन्तु यदि वे संयम से न रह सके अथवा उन्हें सन्तान की आवश्यकता हो तो उनको वेद के शब्दों में नियोग पूर्वक सन्तान उत्पन्न करने का उपदेश करना चाहिए। जो युवती स्त्रियां पति के नियोग में दुःखी एवं चिन्तित रहती हों, साथ ही काम का उनमें उद्वेग उठता हो उनको उपदेश दिया जाना चाहिए कि—

हे (नारी) विधवे तू (एतं गतास्त्रुम्) इस मरे हुए पति की आशा छोड़ के (शेष) बाकी पुरुषों में से (अभिजीवल्लोकं) जीते हुए दूसरे पति को (उपैहि) प्राप्त हो। (सत्यार्थ प्र० समु० ४) नियोग के विधान की बात उस समय कही जाती है जब कि मरने के बाद विधवा 'कामेन शोकेच पीड़यमानः' काम व शोक से पीड़ित रहा करती है। पति के मरने पर अथवा पत्नी की मृत्यु पर तत्काल तो काम की भावना हो ही नहीं सकती है। वेद में—मुर्दा पड़ा हो और स्त्री या पुरुष कामदेव से पीड़ित हो सके अथवा उससे दूसरे सम्बन्ध की बात कही जा सके, इस प्रकार की असम्भव व्यवस्था का आदेश सम्भव भी नहीं हो सकता है और न सत्यार्थ प्रकाश का ही वह भाव है। सत्यार्थ प्रकाश का भाव ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के अर्थ से स्पष्ट हो जाता है। जैसे किसी पुराने प्रसंग पर चर्चा करते समय कोई व्यक्ति बार २ किसी पिछली बात को कहता चला जावे तो दूसरा उससे कहता है कि तू इस बात को छोड़ दे। उसी प्रकार विधवा के घर के

लोग जब विधवा के शोक को कम करने का उपदेश उसे देवें और विधवा अपने पूर्व पति का बार २ स्मरण करे तो उससे कहा जावेगा कि तू इस मरे हुए पति की आशा अथवा ध्यान में दुःखी होना छोड़कर यदि सन्तान के लिए अथवा काम के उद्वेग से शान्ति पाने के लिए तू चाहे तो अन्य व्यक्ति से नियोग कर सकती है । तो इस व्यवहार में 'इस' शब्द का अर्थ यह नहीं होगा कि लाश सामने पड़ी है और विधवा को दूसरी शादी या नियोग का उपदेश दिया जा रहा है । सत्यार्थ प्रकाश के लेख का बहुत स्पष्ट रूप से यही अर्थ है । इसीलिए इसी चतुर्थ समुल्लास में लिखा है कि—

'जो जितेन्द्रिय रह सकें वे विवाह वा नियोग भी न करें'

अर्थात् विधवा यदि पति के न रहने पर जितेन्द्रिय न रह सके और उसके परिवार के लोग उसकी चेष्टा या भावना से अनुभव करें तो बजाय इसके कि वह छिप २ कर गर्भपात या व्यभिचार करे उसके लिए नियोग की व्यवस्था कर दी जावे तो उत्तम रहेगा । हाँ जो विधवायें संयम से रह सकें वे अति उत्तम हैं । वे लोकोपकारी शिक्षा आदि कार्यों में अपने जीवन को लगाया करें, यह ऋषि का आदेश स्पष्ट शब्दों में है ।

इस से यह सिद्ध है कि विपक्षी ने इस प्रश्न में सत्यार्थ प्रकाश की मूल भावना के विरुद्ध अपनी ओर से भाषा गढ़ कर सत्यार्थ प्रकाश को बदनाम करने के लिए यह आक्षेप गढ़ा है । अब विपक्षी थोड़ा अपने घर की ओर देखें । इसी (उदीर्ष्वनार्यभि:) मन्त्र पर उनके पूज्य सायणाचार्य जी ने भाष्य करते हुए लिखा है ।

पति की लाश पर पत्नी का स्वम्बर पौराणिक प्रथा है—

"हे नारि ! त्वं इतासं गत प्राणं एवं पतिं उपशेष उपेत्य शयनं करोषि उदीर्ष्व अस्मात् पति समीपात् ऽउत्तिष्ठ जीवलोकमभि

जीवितं प्राणि समूहं मभिलक्ष्य एहि आगच्छ त्वं हस्त ग्रामस्य पाणिग्राहवत: दिधिषो: पुनर्विवहेच्छो: पत्यु: एतत् जानित्वं जायत्वं अभिसंवभून-अभिमुख्येन सम्यक् प्राप्नुहि"

अर्थात्–"हे नारि ! तू इस मरे हुए पति के समीप जो सो रही है (पड़ी है) इसके पास से उठ, जीते हुए प्राणियों के समूह को देखकर तूं आ, तू हाथ पकड़ने वाले पुनर्विवाह की इच्छा करने वाले दूसरे पति की पत्नी वन जा।"

(तैत्तिरीय आरण्यक प्रपाठक ६ अनुवाक् १ मंत्र १४ परसायण भाष्य)

सनातन धर्म का महानाचार्य सायण तो डंके की चोट मुर्दे पति के पास शोक में कातर पड़ी हुई सद्यो विधवा को लाश को छोड़कर शोक प्रदर्शन करने को आई हुई भीड़ में से पुन: विवाह के लिए किसी का हाथ पकड़ने को आदेश दे रहा है। सनातन धर्म में लाश पर ही स्वयंवर रचाने का विधान है। यह पापाचार खास सनातन धर्म का अङ्ग है। मुर्दे के पड़े होने पर विधवा की शादी रचना यह आर्य समाज का नियम तो नहीं है पर सनातन धर्म में अवश्य है। यही नहीं बल्कि मुर्दे पति के साथ उसकी विधवा पत्नी को सुलाकर मुर्दे से गर्भाधान कराकर ७-७ लड़के पैदा करा लेने का भी सनातनी विधान इन लोगों में चालू है। जैसे कि महाभारत आदि पर्व अ १२० में लिखा है कि मृत राजा व्युपिताश्व के शव के साथ उसकी रानी भद्रा ने सोकर उस मुर्दे से गर्भाधान कराया और फिर ७ लड़के पैदा किए।

अब विपक्षी बतावें कि मुर्दे को जलाने से पूर्व ही अंगुली निर्देश पूर्वक विधवा से शादी के लिए कहना, वहीं पर उसी समय उसका व्याह रचना मुर्दे से सम्भोग कराना, मुर्दे के पास गर्भाधान कराने को पत्नी को सुलाना यह सनातनी पशु धर्म है या नहीं और इसके लिए उनके पास कौन से वेद का प्रमाण है—

वैधव्य जीवन के दुःखमय लम्बे काल में एवं असंयम की अवस्था में सत्यार्थ प्रकाश ने तो विधवा के लिए परिवार की स्वीकृति से नियोग करने का विधान प्रस्तुत किया है जो कि सभ्य एवं शास्त्रोक्त है। किन्तु क्या विपक्षी बतावेंगे कि विधवाओं की काम वासना शान्त करने को उनको पुराणोक्त निम्न नुस्खा बताना कहां की सभ्यता है ? और किस वेद के अनुकूल है।

अंगुली का विचित्र प्रयोग

वैधव्ये द्रविणं सर्वं धर्मार्थं मे भविष्यति।
इति निश्चित्य मनसा वैधव्ये समुपस्थिते ॥ २३ ॥
योनि कण्डू समासाद्य दिवा वा यदि वा निशि।
एकान्त स्थान मभ्येत्य विवृत्य वसनं भगम् ॥ २४ ॥
शिशनस्य वाथवा पापं यत्वदन्तर वेशनात्।
अतो अपि कण्डू सम्भूतौ प्रवेशयेदथाङ्गलीम्।
विचित्र चेष्ठा कृत्वा तु कण्डूबद्ध रतः परम् ॥२७॥
मर्दयित्वा कराभ्यां तत्सन्ताड्य च विवृत्यतु।
अस क्षुधुन्वती पादौ विवृतास्याति दुःखिता ॥२८॥
खट्वां काष्ठमथा ज्ञिड्य चस्तनपींडं यथा प्रियम्।
अथो विचित्र चित्तत्वे ततः प्रद्युष्टताभवत् ॥२९॥
अज्ञातं च गृहं गत्वा रमये देव निश्चितम् ॥ ३० ॥

(पद्म पुराण पाताल खन्ड अ ११२ कलकत्ता)

इस पुराण के श्लोक का अर्थ हम इसलिए नहीं करते हैं क्योंकि यह बहुत अश्लील है। पाठक संस्कृत जानने वालों से अर्थ पूछ कर जानलें। बहुत संक्षिप्त अर्थ इसका यह है कि किसी विधवा के गुप्तांग में कण्डू (खुजली) पैदा हो जावे तो वह नग्न होकर हाथ से उसे मले हाथ की अंगुली से, लकड़ी से या किसी पुरुष से उसे मिटा ले अथवा गुप्त रूप से किसी के घर चली जावे तथा रमण कराकर उसे दूर कराले।

सनातन धर्मो पं० माधवाचार्य जी के पुराणों के नुस्खे भले प्रकार आज़मूदा हैं। इसमें सन्देह करना व्यर्थ है। यह विधवा उद्धार के सनातनी नुस्खे हैं तो अंगुली से योनि काण्डू मिटाने की विधि पौराणिक अवतार व्यासदेव ने स्वयं अनुभव करके पुराणों में लिखी थी या पं० माधवाचार्य जी का अनुभूत नुसखा लिखा था, यह विपक्षी कृपया स्पष्ट करदें ?

पांचवां आक्षेप—सत्यार्थ प्रकाश पृ० १२८ में लिखा है कि यदि दीर्घ रोगी पुरुष की पत्नी से अथवा सगर्भा के पति से न रहा जाय तो वह अन्य से व्यभिचार कर ले यह असभ्य व्यवहार कौन वेद के अनुकूल है ?

उत्तर—जो शब्द, वाक्य अथवा भाषा विपक्षी ने ऊपर लिखी है सत्यार्थ प्रकाश में वह सर्वथा नहीं है। सत्यार्थ प्रकाश में इस समुल्लास ४ में नियोग का प्रकरण चल रहा है और इसमें शङ्का समाधान भी किया जा रहा है। ऋषि के सामने पौराणिक पण्डित लोग अनेक विषयों पर शंकायें उपस्थित किया करते थे और ऋषि उनको वैदिक सिद्धान्त समझाया करते थे। ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश में उन्हीं में से एक प्रश्न लिखा है—

पौराणिक प्रश्न—हमको तो नियोग की बात में पाप मालूम पड़ता है।

ऋषि का उत्तर—"जो नियोग की बात में पाप मानते हों तो विवाह में पाप क्यों नहीं मानते ? पाप तो नियोग के रोकने में है। क्योंकि ईश्वर के सृष्टि क्रमानुकूल स्त्री पुरुष का स्वाभाविक व्यवहार रुक नहीं सकता है, सिवाय वैराग्यवान पूर्ण विद्वान योगियों के ? क्या गर्भपात भ्रूणहत्या और विधवा स्त्री और मृत स्त्री पुरुषों के महासन्ताप के पाप नहीं गिनते हो, क्योंकि जब तक वे युवावस्था में हैं, मन में सन्तानोत्पत्ति और विषय की चाहना होने वालों को किसी राज्य

व्यवहार या जाति व्यवहार से रुकावट होने से गुप्त २ कुकर्म बुरी चाल से होते रहते हैं। इस व्यभिचार और कुकर्म के रोकने का एक ही श्रेष्ठ उपाय है कि जो जितेन्द्रिय रह सके वे विवाह वा नियोग भी न करें तो ठीक है। परन्तु जो ऐसे नहीं हैं उनका विवाह और आपत्तिकाल में नियोग अवश्य होना चाहिए। इससे व्यभिचार का न्यून होना, प्रेम से उत्तम सन्तान होकर मनुष्यों की वृद्धि सम्भव है और गर्भ हत्या सर्वथा छूट जाती है। नीच पुरुषों से उत्तम स्त्री और वेश्यादि नीच स्त्रियों से उत्तम पुरुषों का व्यभिचार रूप कुकर्म उत्तम कुल में कलंक, वंश का उच्छेद, स्त्री पुरुषों का सन्ताप और गर्भ हत्या आदि कुकर्म विवाह और नियोग ने निवृत्त होते हैं, इसलिए नियोग करना चाहिए।

प्रश्न—नियोग में क्या २ बात होनी चाहिए ?

उत्तर—जैसे प्रसिद्धि से विवाह, वैसे ही प्रसिद्धि से नियोग, जिस प्रकार विवाह में भद्र पुरुषों की अनुमति और कन्या वर की प्रसन्नता होती है, वैसे ही नियोग में भी, अर्थात् जब स्त्री पुरुष का नियोग होना हो तब अपने कुटुम्ब में पुरुष स्त्रियों के सामने (प्रगट करें कि) हम दोनों नियोग सन्तानोत्पत्ति के लिए करते हैं। जब नियोग का नियम पूरा होगा तब हम संयोग न करेंगे। जो अन्यथा करें तो पापी और जाति के वा राज्य के दण्डनीय हों।"

उपरोक्त नियोग की व्यवस्था से स्पष्ट है कि व्यभिचार-गर्भपात एवं वंश नाश तथा वेश्यागमन आदि पापों से बचाने के लिए ऋषि ने शास्त्रीय प्राचीन मर्यादा के अनुकूल नियोग की आपत्ति कालिक धर्म व्यवस्था को प्रतिपादित किया है। वह मानव समाज के अन्दर से चारित्रिक दुर्बलता के कारण होने वाले गर्भपात छिप २ कर होने वाले व्यभिचार वेश्यागमन आदि पापों को दूर करना चाहते थे। ऋषि दयानन्द जी महाराज की दृष्टि में मानव शरीर के सर्व श्रेष्ठ तत्व 'वीर्य' का कितना भारी महत्व था यह उनके ग्रन्थों को पढ़ने से पता

लगता है। वीर्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में वैद्यक ग्रन्थों में लिखा है:—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदाः प्रजायते।
मेंदसोऽस्तिततो मज्जा, मज्जा शुक्रस्य सम्भवः ॥ (सुश्रुतः)

अर्थात्—रस से रक्त, रक्त से मांस, माँस से मेद और मेद से मज्जा तथा मज्जा से वीर्य की उत्पत्ति होती है।

इस क्रम से भोजन किए हुए पदार्थ का ३० दिन में अनेक रसायनिक प्रक्रियाओं में शरीर में घूमने के पश्चात् वीर्य बनता है। और यह वीर्य तत्व—

रस इक्षौ यथा दध्नि सीर्पस्तैलं तिले यथा।
सर्वत्रानुगतं देहे शुक्रं संस्पर्शने तथा ॥

अर्थ—जैसे ईख में रस, दही में घी और तिलों में तेल रहता है उसी प्रकार यह समस्त शरीर में व्याप्त रहता है। इस श्रेष्ठ वीर्य तत्व के बारे में लिखा है कि—

मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात्।

वीर्य को नष्ट करना मौत हैं और वीर्य को धारण करना जीवन का कारण है।

न तपस्यत् इत्याह ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।
ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवो न तुमानुषः ॥

अर्थात्—वीर्य का धारण करना ही सर्व श्रेष्ठ तप है, इस संसार में ऊर्ध्वरेता वीर्य की ऊर्ध्व गति रखने वाला अथवा जो कभी वीर्य को नीचे नहीं गिराता वह मनुष्य नहीं देवता है। इसलिए वेद में लिखा है:—

ब्रह्मचर्येण देवा मृत्युमुपाघ्नतः।

ब्रह्मचर्य (वीर्य धारण करने) से देवता (विद्वान मनुष्य) मृत्यु को भी जीत लेते हैं। इस मानव शरीर के अति महत्वपूर्ण जीवन के आधार तत्व वीर्य को केवल सन्तानोत्पत्ति के निमित्त प्रयुक्त करने के

लिए गृहस्थ आश्रम में जाने का विधान शास्त्रों में है। सनातनी लोग पुराणों की व्यभिचार प्रसारिणी शिक्षा के दूषित प्रभावों एवं अपनी चारित्रिक दुर्बलताओं के कारण अपने इस महत्वपूर्ण उत्तरदायित्वों को न समझकर उस तत्व को नष्ट करने के लिए कामोन्मत्त रहते हैं। इसीलिए ऋषि दयानन्द जी महाराज ने उपदेश देते हुए लिखा है—

"जो जितेन्द्रिय रह सकें वे विवाह वा नियोग भी न करें तो ठीक है। परन्तु जो ऐसे नहीं हैं उनका विवाह और आपत्ति काल में नियोग अवश्य होना चाहिए।"

ऋषि की यह व्यवस्था इसलिए है ताकि सनातनी आदि लोग व स्त्रियाँ कुमार्गगामी बनकर मानव समाज में व्यभिचारादि दोष न पैदा कर सकें। सत्यार्थ प्रकाश में इसी चतुर्थ समुल्लास में—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्।
(निरुक्त ३।४)

इसका अर्थ करते हुए ऋषि लिखते हैं:—"हे पुत्र! तू अङ्ग २ से उत्पन्न हुए वीर्य से और हृदय से उत्पन्न होता है, इसलिए तू मेरा आत्मा है, मुझसे पूर्व मत मरे किन्तु सौ वर्ष तक जी। जिससे ऐसे २ महात्मा और महाशयों के शरीर उत्पन्न होते हैं, उसको वेश्यादि दुष्ट क्षेत्र में वोना व दुष्ट बीज अच्छे क्षेत्र में बुवाना महा पाप का काम है।"

इस प्रमाण में स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द जी महाराज वीर्य को कितना महत्व देते थे। वे इस बात को पाप समझते थे कि मनुष्य वीर्य को काम के वशीभूत होकर वेश्या आदि नीच कुल की औरतों में तथा व्यभिचारादि में फँस कर वरबाद किया करे। वे वीर्य का श्रेष्ठ-तम उपयोग श्रेष्ठ सन्तान को उत्पन्न करने तक सीमित रखना चाहते

थे। ऋषि की इस प्रकार की धार्मिक व्यवस्था को देख कर बहु विवाह के समर्थक किसी पौराणिक ने उनसे प्रश्न किया कि—

प्रश्न—"जब एक विवाह होगा एक पुरुष को एक स्त्री और एक स्त्री को एक पुरुष रहेगा तब स्त्री गर्भवती, स्थिर रोगिणी अथवा पुरुष दीर्घ रोगी हो और दोनों की युवावस्था हो रहा न जाय, तो फिर क्या करें ?"

उत्तर—इसका प्रत्युत्तर नियोग विषय में दे चुके हैं। और गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष से वा दीर्घ रोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग करके उसके लिए पुत्रोत्पत्ति कर दे, परन्तु वेश्यागमन वा व्यभिचारादि कभी न करे।"

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि ऋषि ने यह देखकर कि दीर्घ रोगी पुरुष की अवस्था में युवती स्त्री एवं दीर्घ रोगिणी स्त्री की अवस्था में युवा पुरुष यदि संयम से नहीं रह सकेंगे तो वे वेश्यागमन आदि व्यभिचार छिप २ कर करेंगे और अपने वीर्य का विनाश करेंगे। अतः ऋषि ने नियोग के आपत्ति कालिक धर्म की प्राचीन व्यवस्था के अनुसार यह व्यवस्था दी है कि वे अपने परिवार के जनों की स्वीकृति ले किसी सन्तान की इच्छुक विधवा आदि स्त्री से पुरुष तथा इसी प्रकार की अवस्था वाले पुरुष से स्त्री समाज की स्वीकृति से नियुक्त होकर सन्तानोत्पत्ति कार्य में प्रवृत्त हो सकेंगे, एवं गर्भाधान के पश्चात उनका सम्बन्ध विच्छेद हो जावेगा। इस व्यवस्था से अमूल्य वीर्य तत्व का व्यर्थ विनाश न होकर मनुष्यों की वृद्धि होगी एवं छिप २ कर व्यभिचार–धन व स्वास्थ का विनाश तथा गर्भपातादि पापों की रुकावट हो सकेगी।

इस आपत्ति कालिक व्यवस्था पर किसी को आपत्ति करने की गुन्जायश नहीं है। हां, जिनके कुलों में व्यभिचार एवं छिप २ कर

गर्भपातादि होते रहते हैं। जिनके देवता ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र आदि पर नारियों के खुले लम्पट हैं, जिन लोगों ने अपने व्यभिचार को उचित बताने के लिए योगीराज कृष्ण को भी व्यभिचारी शिरोमणि बता रखा है उन सनातनी पंडितों को आर्य समाज की आपत्ति कालिक विवशता की अवस्था में शास्त्रों द्वारा समर्थित एवं समाज व परिवार की स्वीकृति से की जाने वाली नियोग व्यवस्था में पाप क्यों न दीखेगा। इनको तो वह कुकर्म पसन्द हैं जो इनके पुरखे करते रहे हैं और इनके मान्य शास्त्रों में लिखे हुए हैं।

सच्चे सनातन धर्म का स्वरूप

अनावृता किलपुरा स्त्रिय आसन वरानने।
कामाचार विहारिण्यः स्वतन्त्राश्चारु हासिनि ॥४॥
तासाव्युच्चर माणानां कौमारात सुभगेपतीन्।
नाधर्मोऽभूद्वारोहे सहि धर्मो पुराभवत् ॥५॥
स्त्रणा मनुग्रहकरः सहि धर्मः सनातनः ॥६॥
श्वेत केतो किल पुरा समक्ष मातरं पितुः।
जग्राह ब्राह्मणः पाणौ गच्छाव चाब्रवीत ॥११॥
ऋषि पुत्रस्ततः कोपं चकारामर्ष चोद्रितः।
मातरं तां तथा दृष्टवा नीयमाना बलादिव ॥१२॥
क्रुद्धं तं तु पिता दृष्टवा श्वेत केतु मुवाचह।
मा तात कोपं कोषींस्त्वमेष धर्म सनातनः ॥१३॥
ऋता वृत्तौ राजपुत्रि स्त्रिया भर्त्ता पति वृत्ते।
नाति वर्तव्य इत्येवं धर्म धर्मविदो विदुः ॥२५॥
शेषेष्व न्येषु कालेषु स्वातन्त्रयं स्त्री किलर्हतिः।
धर्म्ममेव जनाः सन्तः पुराणं परिचक्षते ॥२६॥
(महाभारत आदि पर्व)

अर्थ—हे सुन्दर मुख वाली ! निश्चय से पहिले स्त्रियाँ बेपर्दे थी, और हे सुन्दर हँसी वाली ! वे आवारा गर्द और स्वतन्त्र थी ।४। हे सौभाग्य वाली ! उनके कुमार अवस्था से ही पतियों को उलंघन करने में कोई अधर्म न था । हे वरारोहे, यही सनातन धर्म था ।५। यह पौराणिय धर्म स्त्रियों पर दया करने वाला है और यही सनातन धर्म है ।६। निश्चय जानो पुराने जमाने में श्वेत केतु की माँ को उसके पिता (उद्दालक ऋषि) के सामने ही एक ब्राह्मण ने (सम्भव है विपक्षियों का कोई पूर्वज हो) हाथ से पकड़ा और कहा कि आओ चलें ।११। ऋषि पुत्र श्वेत केतु यह देख कर कि मेरी माता को इस प्रकार जबरन बलात्कार के लिए से जाया जा रहा है, क्रोध में आ गये । १२ । तब उसके पिता ने क्रोध में देखकर श्वेत केतु से कहा कि बेटा क्रोध मत करो, यही तो सनातन धर्म है ।१३। हे राज पुत्री ! प्रत्येक ऋतुकाल में अपने पति का उलंघन नहीं करना चाहिए, ऐसा धर्म के जानने वाले कहते हैं ।२५। और बाकी समयों में निश्चय रूप से स्त्री आज़ाद है (पौराणिक) सन्त लोग इस प्रकार धर्म को पुराण धर्म (सनातन धर्म) कहते हैं ।।२६।।

इस कथा में हमने देखा कि सनातन धर्म वास्तव में खुले व्यभिचार का ही दूसरा नाम है । औरतों को खुले व्यभिचार को प्रोत्साहन करने वाले इन व्यभिचार प्रिय पौराणिक पंडितों को शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार नियोग व्यवस्था पर मुँह खोलने का कोई अधिकार नहीं है । नियोग से इनके खुले दुराचारों एवं व्यभिचार में बाधा पड़ती है । अतः ये लोग आर्य समाज को भर पेट कोसते रहते हैं । अब एक दूसरी कथा और देखें:—

ब्रहस्पति का गर्भवती भाभी से व्यभिचार—

अतोतथ्य इति ख्यात् आसीद्धीमानृषिः पुरा ।
ममता नाम तस्यादीद्भर्य्या परम सम्मता ।।८।।

उतथ्यस्य यवीयांस्तु पुरोधास्त्रिदिवौकसाम ।
वृहस्पतिर्वृहत्तेजा ममता मन्व पद्यत ॥९॥
उवाच ममता तंतु देवरं वदतां वरम् ।
अन्तर्वत्नी त्वहं भ्राता ज्येष्ठो नारम्यतामिति ॥१०॥
अयं च मे महाभाग कुक्षावेव वृहस्पते ।
औतथ्यो वेद मात्रापि षडङ्गा प्रत्यधीयते ॥११॥
अमोघरेतस्त्वंचापि द्वयोर्नास्त्यत्र संभवः ।
तस्मादेव चं न त्वद्य उपार मितुमर्हसि ॥१२॥
एवमुक्तस्तदा सम्यग्वृहस्पतिरधीरधीः ।
कामात्मानं तदात्मानं न शशाक नियच्छितुम् ॥१३॥
स बभूव ततः कामीतया सार्द्धम कामया ।
उत्सृजन्तन्तु तं रेतः स गर्भस्थोऽभ्यभाषत ॥ १४ ॥
भोस्तात मां गमः कामंद्वयोर्द्वयोर्नास्तीह सम्भवः ॥
अल्पावकाशो भगवन्पूर्वचाहं मिहागतः ॥१५॥
अमोघरेतश्चाश्य भवान्न पीडां कर्तृ मर्हसि ।
अश्रुत्वैव तु तद्वाक्यं गर्भस्थस्य वृहस्पतिः ॥१६॥
जगोम मैथुनायैव ममतां चाह लोचनाम् ।
शुक्रोत्सर्गं ततो बुद्धवा तस्या गर्भगतो मुनिः
पद्मपारोधयन् मार्गं शुक्रस्य च ब्रहस्पते ॥१७॥
स्थानं प्राप्तमथ तद्रेतः प्रतिहतं तदा ।
पपात सहसा भूमौ ततः क्रुद्धो ब्रहस्पतिः ॥१८॥
तं दृष्ट्वा पतितं शुक्रं शशाप स रुषान्वितः ।

उतथ्य पुत्र गर्भस्थंनिर्भर्त्स्यं भगवान ऋषिः ॥१६॥
यस्मात्वमी दृशेकाले सर्वभूपेप्सिते सति ।
एवमात्थ वचस्तस्मात्तमो दीर्घं प्रवेद्यति ॥२०॥
स वै दीर्घतमा नाम शापादृषि जायते ॥२५॥

(महाभारत आदिपर्व)

अर्थ—पूर्वकाल में उतथ्य नाम का बुद्धिमान प्रसिद्ध ऋषि था। उसकी अति सुन्दरी ममता नाम की पत्नी थी।८। उतथ्य का छोटा भाई देवताओं का गुरु वृहस्पति जो महान तेजस्वी था (अपनी भाभी) ममता के पास समागम की इच्छा से गया।९। ममता उस देवर वृहस्पति से कहने लगी 'मैं तुम्हारे बड़े भाई से गर्भवती हूं, इसलिए सबर करो। हे वृहस्पति ! यह मेरी कोख में ही महाभाग्य उतथ्य का पुत्र यहां भी छः अंगों सहित वेद का पाठ कर रहा है।११। और तुम भी निष्फल वीर्य वाले हो और यहां (मेरे गर्भाशय में) दो की गुन्जायश नहीं है, अतः अभी ऐसा करना ठीक नहीं है।१२। इस प्रकार ममता के समझाने पर भी अधीर बुद्धि कामदेव से मस्त हुआ व्रहस्पति अपने मन को न रोक सका।३१। उस कामी उस अकामा के साथ जवर्दस्ती मैथुन में प्रवृत हो गया। उसको वीर्य छोड़ते हुए देख कर गर्भ में अन्दर वैठा मुनि बोला।१४। हे चाचा, यह क्या करते हो, काम को मत प्राप्त हो (विषय मत करो) यहाँ दो का रहना सम्भव नहीं है (स्थान कम है) और मैं पहिले से ही यहां आ चुका हूं। १५। और आपका वीर्य भी खाली जाने वाला नहीं है। मुझे कष्ट न देवें। उस गर्भ के अन्दर के बालक की वात को सुने बिना ही व्रहस्पति।१६। उस सुन्दर नेत्रोंवाली भाभी के साथ में प्रवृत्त हो गये। वीर्य के गर्भ में गिरने के समय को जानकर गर्भ में वैठे मुनि ने व्रहस्पति के वीर्य अन्दर के जाने के रास्ते को (अन्दर से) पांव लगाकर रोक लिया।१७। रोकने से अन्दर जाकर

स्थान न प्राप्त कर सकने से वीर्य अचानक पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब ब्रहस्पति क्रोध में आगये।१८। अपने वीर्य को पृथ्वी पर गिरा हुआ देख कर ब्रहस्पति ने क्रोध में शाप दिया। गर्भ में बैठे हुए (अपने बड़े भाई) उतथ्य के पुत्र को धमकाते हुए ब्रहस्पति ने कहा तूने मुझको ऐसे समय में जो कि सब प्राणियों को प्रिय है, इस प्रकार की बात कही है, इस लिये तेरे अन्दर तीव्र अन्धकार प्रविष्ट होगा।१९। इस शाप से ममता के गर्भ से अन्धा दीर्घतमा नाम का ऋषि पैदा हुआ।२०।

अब विपक्षी बतावें कि सनातन धर्म की यह गर्भवती के साथ वलात्कार की घोर व्यभिचारिणी व्यवस्थायें ठीक हैं या व्यभिचार, वैश्यागमन आदि को कम करने के लिए ऋषि दयानन्द की शास्त्र सम्मत नियोग की व्यवस्था ठीक है। रंडियों का भविष्य पुराण के आदेशानुसार विना फीस के उद्धार के बहाने स्वाद लेने वाले पौराणिक पण्डितों को सिवाय छल करने के और आता ही क्या है। उनको तो अच्छी बात भी इसलिए बुरी लगती है कि उनकी अय्याशी को रुकावट पहुंचती है। अब हम विपक्षियों से पूछते हैं कि देवताओं के गुरु ब्रहस्पति का गर्भवती भाभी से व्यभिचार एवं श्वेत केतु की मां के साथ जिना विलजब्र तथा उद्धालक का उस व्यभिचार को सनातन धर्म बताना किस वेद के अनुकूल है ? यदि पांण्डित्य गर्व बाकी हो तो जवाब देने का साहस दिखावे। व्यभिचार की इच्छा (योनि कण्डु) होने पर गुप्त रूप से व्यभिचार कराने की आज्ञा पद्म पुराण में स्पष्टतया दी गई है जिस का उदाहरण हमने विपक्षी के चौथे प्रश्न के उत्तर में दिया है। विपक्षी देखे कि पुराण का समाधान ठीक है या सत्यार्थ प्रकाश की व्यवस्था ठीक है।

छटा आक्षेप–सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ४ प्र ११० में लिखा है कि विवाह संस्कार के समय पर बधू से कहे कि तू मेरे अतिरिक्त अन्य

पति की चाहना करने वाली भी हो यह लेख किस वेद मन्त्र के अनुसार है।

उत्तर—यहां भी विपक्षी जनता की आँखों में धूल झोंकना चाहते हैं उसको छल करने में लाज भी क्यों नहीं आती है हमें इसका आश्चर्य है। सत्यार्थ प्रकाश में विवाह के समय इस प्रकार की बात कहने का कोई उल्लेख नहीं है। सत्यार्थ प्रकाश में सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ स्त्री एवं पुरुषों के सम्बन्ध में नियोग की व्यवस्था के प्रकरण में निम्न प्रकार का लेख है।—

"प्रश्न—नियोग मरे पीछे होता है वा जीते पति के भी ?

उत्तर—जीते भी होता है—

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत ॥ऋ० मं० १० सु० १० मंत्र १०।

जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे सुभगे ! सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्मीत् (मत) मुझसे (अन्यम्) दूसरे पति की इच्छा कर क्यों कि अब मुझसे सन्तानोत्पत्ति न होगी। तब स्त्री दूसरे से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करे। परन्तु उस विवाहित महाशय पति की सेवा में तत्पर रहे। वैसे ही स्त्री भी जब रोगादि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ हो तब अपने पति को आज्ञा देवे कि हे स्वामी आप सन्तानोत्पत्ति की इच्छा मुझ से छोड़ के किसी दूसरी विधवा स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कीजिए जैसा कि पाण्डु के राजा की स्त्री कुन्ती और माद्री आदि ने किया और जैसा व्यास जी ने चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य के मर जाने पश्चात् उन अपने भाइयों की स्त्रियों से नियोग करके अम्बिका में धृतराष्ट्र और अम्बालिका में पाण्डु और दासी में विदुर की उत्पत्ति की, इत्यादि इतिहास इस बात में प्रमाण हैं।"

सत्यार्थ प्रकाश में नियोग के समर्थन में मनुस्मृति आदि के अनेक प्रमाण दिए हुए हैं जो कि सनातन धर्म के मान्य शास्त्र हैं और जिन से विपक्षी भी इन्कार नहीं कर सकते हैं। हमने नियोग के समर्थन में अपनी पुस्तक 'सनातन और नियोग व्यवस्था' में पचासों शास्त्रीय पुराणोक्त एवं अन्य ग्रन्थों के प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया है कि सनातन धर्म में नियोग सदा सर्वदा से आपत्ति कालिक धर्म के रूप में व्यवहार होता आया है जब कि आर्य समाज उसे अभी केवल सिद्धान्त रूपेण ही मान रहा है। विपक्षी लोगों को सदैव सत्य आक्षेप ही करना चाहिए। झूठी बातें लिखना सज्जनों का काम नहीं होता है। इस प्रकार हमने दिखाया कि इस प्रश्न को विपक्षी ने छल करके विवाह के समय वर वधू का कहा हुआ जो लिखा है वह उनका पाखण्ड है सत्यार्थ प्रकाश के ऊपर के लेख को देखकर अब उसके पाखण्ड का निराकरण हो जाता है। ऋषि ने जिस बात की व्यवस्था वेद मंत्र के आधार पर की है विपक्षी को वेद का मानने वाला होने से उस पर आक्षेप का कोई हक़ हासिल नहीं है। आज भी पति के नपुंसक होने पर सैकड़ों स्त्रियां दुश्चरित्र होकर नीच नौकरों से संयुक्त होकर छिप २ कर गर्भ धारण कर लेती हैं और उससे नीच संस्कारों से युक्त सन्तानें जन्म लेकर कुल कलंक बनती हैं अथवा सैकड़ों वंश सन्तान के अभाव में नष्ट हो जाते हैं। समाज में से दुराचार को मिटाने एवं वंश संचालन की व्यवस्था की दृष्टि से वेदादि शास्त्रों में नियोग की व्यवस्था की हुई है। पुराणादि ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक दृष्टांतों की भरमार है। तब यदि उसी शास्त्रीय बात को ऋषि दयानन्द जी महाराज ने उचित जानकर वेद के प्रमाण के साथ लिख दिया तो विपक्षियों के सर में दर्द क्यों होने लगता है और वे छल कपट कर के सत्यार्थप्रकाश की बात को तोड़ मरोड़ कर उपस्थित करने में लज्जित क्यों नहीं होते हैं ?

नियोग के सम्बन्ध में सत्यार्थप्रकाश में स्पष्ट लेख है "विवाह वा

नियोग सन्तानों के अर्थं किये जाते हैं पशुवत काम क्रीड़ा के लिये नहीं।" और इसी बात का समर्थन वशिष्ठ स्मृति ने किया है "लोभान्नास्ति नियोगः।" ॥ ५७ ॥ अर्थात् कामभोगादि के लालच से नियोग नहीं है। नियोग विशेष परिस्थितियों में समाज एवं परिवार की स्वीकृति से विशेष मर्यादाओं के साथ निश्चित अवधि तक के लिये होता है। नियोग शास्त्रीय प्राचीन पद्धति है जो भारतवर्ष में सर्वदा चालू रही है। यह एक आवश्यक सामाजिक व्यवस्था है जिसे सनातनी शास्त्रों की पूर्ण मान्यता प्राप्त है। विपक्षी का जिस वाक्य पर अथवा ऋषि दयानन्द की व्यवस्था पर आक्षेप है वह ऋग्वेद के मन्त्र में सन्तान्नोत्पत्ति में असमर्थ ग्रहस्थों के लिये है। नपुंसक हो जाने अथवा वर्तमान में होने की अवस्था में विपक्षी भी वेद की उक्त आज्ञा का पालन अपने यहां करा सकेंगे यदि उनको सन्तानोच्छा होवे। आर्य समाजियों को इस पर कोई आपत्ति नहीं होगी, विपक्षी निश्चय रखें।

॥ समाप्त ॥

'खण्डन मण्डन ग्रन्थमाला' के

अवतार रहस्य (अवतारवाद का पोलखाता)		
शिवलिंग पूजा क्यों ? (मूत्रेन्द्रिय पूजा का भण्ड		
पुराणों के कृष्ण		
मृतक श्राद्ध खण्डन		
शिवजी के चार विलक्षण बेटे		
पौराणिक मुख चपेटिका	मू०	१९ न० पै०
शास्त्रार्थ के चेलेन्ज का उत्तर	मू०	२५ न० पै०
नृसिंह अवतार बध	मू०	१२ न० पै०
पौराणिक कीर्तन पाखण्ड है	मू०	२५ न० पै०
संसार के पौराणिक विद्वानों से ३१ प्रश्न	मू०	१२ न० पै०
सनातन धर्म में नियोग व्यवस्था	मू०	२५ न० पै०
माधवाचार्य की चुनौती का उत्तर	मू०	४४ न० पै०
मुनि समाज मुख मर्दन	मू०	२।)
खून के आंसू	मू०	

नोट—कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ शीघ्र प्रकाशित हो रहे हैं।

धार्मिक पाखण्डों के खण्डन मण्डन एवं वैदिक धर्म के प्रचार के लिए इन पुस्तकों को भारी संख्या में मँगाकर प्रचार करें।

व्यवस्थापक—

वैदिक साहित्य प्रकाशन संघ

कासगंज (उ० प्र०) भारतवर्ष